DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

कर्मयोग कर्तव्यबोध का विज्ञान: एक मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि

अखिलेश कुमार विश्वकर्मा[1*], भाभोर तुलसी भूपेन्द्रभाई[2] और पसाया विद्या राकेशभाई[3]

[1] सहायक प्राध्यापक (अष्टांग योग विभाग) लकुलीश योग विश्वविद्यालय, जाखन (गुजरात) 363421

[2,3]स्नातक विद्यार्थी (अष्टांग योग विभाग) लकुलीश योग विश्वविद्यालय, जाखन (गुजरात) 363421

([*]संपर्क कार्य लेखक और ईमेल: डॉ. अखिलेश कुमार विश्वकर्मा- akhilhariom123@gmail.com)

संक्षिप्तिका

वर्तमान समाज में अकर्मण्य मानसिकता पुरुषार्थ को अपनी वाणी का आभूषण बनाकर सफलता का श्रेय एवं पारितोषिक फल की महत्वाकांक्षा से ग्रसित है। समाज का एक बड़ा वर्ग कुछ न करने की प्रवृत्ति को अपना स्वभाव एवं स्वाभिमान मान बैठा है। अगर अन्तस् में कुछ करने की प्रेरणा जाग्रत होती है तो वह अपने मूल उत्तरदायित्वों के अतिरिक्त अन्य सब कुछ करने की चेष्ठा करता है। इस प्रकार वर्तमान में अधिकांश व्यक्ति स्वधर्म अथवा स्वकर्म से च्युत् होकर मान, सम्मान, यश, पद, प्रतिष्ठा और गौरव की भूख से पीड़ित है।

अकर्मण्य होकर तथा दूसरों के कार्य में व्यवधान उत्पन्न करने वाले स्वघोषित साधक, धार्मिक, दर्शनिक एवं नैतिकता का छलावा करने वाले लोगों को प्राण एवं चेतना की दृष्टि देने का कार्य कर्मयोग करता है। कर्मयोग कर्तव्यबोध का अप्रतिम साधन है। कर्मयोग कर्म में समर्पण को जोड़ता है, समर्पण अहंकार को तोड़ता है, अहंकार का अभाव स्वयं से जोड़ता है, स्व से जुड़ा हुआ व्यक्ति स्वयं के कर्तव्य से स्वतः जुड़ जाता है। कर्तव्य का बोध सभी धर्मादि पुरूषार्थ से जोड़ता है तथा एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपनी भूमिका का निर्वहन करता है।

कूट शब्द: *कर्म, कर्मयोग, कर्तव्य, कर्तव्यबोध, उत्तरदायित्व और योग।*

प्रस्तावना

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ ईशावस्योपनिषद्- 15

अकर्मण्यता वर्तमान की निरंतर बढती प्रवृत्ति है। स्वघोसित साधक को भी गर्भ अनुभव होता है ये बताते हुए कि मेरा काम बैठे-बैठे करने का है। आज प्रश्न किंकर्तव्यविमूढ़ का नहीं है, अपितु क्या न करें एवं क्या न करना पड़े का प्रश्न है। जिस पद, कार्य, उत्तरदायित्व का वेतन समय से लेने की प्रतीक्षा रहती है, उसी कार्य को न करने के तरीकों की खोज आज अमूमन लोगों का स्वभाव बन गया है। ऐसे लोग स्वकर्म न करते हुए भी बड़े-बड़े मंचों से भारत को विश्वगुरू बनाने की चिंता करते दिखाई देते हैं। इस प्रवृत्ति से न केवल व्यक्तिगत अपितु सार्वजनिक क्षमताओं एवं संसाधनों की भी क्षति होती है। स्वकर्म के प्रति निष्ठा एवं सचेतना के विस्तार हेतु कर्मयोग एक प्रमुख साधन भी भूमिका का निर्वहन कर सकता है। कर्मयोग समर्पण भाव से पुरूषार्थ पूर्वक किया गया कर्म है। योग भावना से किया गया कर्म सजगता का वर्धन एवं अहं भाव का विसर्जन करता है। फलतः कर्मयोग न केवल कर्म के प्रति कर्तव्यनिष्ठा को बढ़ाता है अपितु मन से संकीर्णता, अप्रवृत्ति, लोभ, मोह, स्तेय, परिग्रह, असंतोष, अहंकार के स्वभाव में कमी लाता है। इन मानसिक एवं भावनात्मक प्रवृत्तियों के ह्रास से स्वयं तथा स्वयं के उत्तरदायित्व के कर्मों का बोध होगा। अतः कर्मयोग स्वकर्म अथवा कर्तव्यबोध का यौगिक साधन है। मानसिक परिवर्तन के इस विश्लेषण का अध्ययन इस शोधपत्र का प्रमुख प्रयोजन है।

शोध-पत्र की आवश्यकता

वर्तमान समय में अधिकांश मनुष्य अकर्मण्यता के दुराग्रह से ग्रसित होकर कर्म की उपेक्षा एवं अधिकाधिक मूल्य की अपेक्षा करता है। कर्म सम्पादन का माध्यम जिनकी वाणी तथा कर्मशील होने का प्रदर्शन जिनका स्वभाव होता है। व्यवस्थापक, प्रबंधक, श्रमिक से लेकर आज हर वर्ग का अधिकांश समूह स्वयं के उत्तरदायित्वों से भागने का अथक प्रयास करता है। इस प्रवृत्ति से व्यक्ति जिस भूमिका का निर्वहन कर रहा होता है, उस परिवार, समाज अथवा संस्था के समय, संसाधनों का दुरूपयोग करता हुआ व्यवस्थाओं में विकृतियों को प्रश्रय देता है। अतः इस प्रवृत्ति से निकलना व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए आवश्यक है।

शोध-पत्र के उद्देश्य

1. कर्म एवं कर्मयोग की सामान्य अवधारणा को जानना।
2. कर्मयोग एवं मन के सम्बन्ध को जानना।
3. कर्तव्यबोध में कर्मयोग की उपादेयता को सिद्ध करना।

© 2026 by Author

DIVYAYATAN
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

कर्मयोग की अवधारणा

''क्रिया' और 'कर्म', दोनों शब्द 'कृ' धातु से लिए गए हैं।" (सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, 2013, पृ. 1) "निरूक्त के अनुसार 'क्रियते इति कर्म' अर्थात् जो किया जाए वह 'कर्म' है।" (श्रीवास्तव, 2006, पृ. 134) 'कर्म का सामान्य अर्थ क्रिया अथवा गति से है।' (शर्मा, 2016, पृ. 443) ***निरालम्बोपनिषद्*** में 'इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को कर्म कहा जाता है।' (कर्मेति च क्रियमाणेन्द्रियैः कर्माण्यहं करोमीत्यध्यात्मनिष्ठाकृतंकर्मैवकर्म। निरालम्बोपनिषद्- 11) धर्म या ईश्वर, समय, परिस्थिति तथा समाज से प्राप्त उत्तरदायित्वों अथवा भूमिकाओं का पूर्ण पुरूषार्थ पूर्वक फलासक्ति रहित निर्वहन करना कर्मयोग कहलाता है। ***त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्*** के अनुसार- 'कर्म और कर्तव्य द्वारा शास्त्रानुकूल कर्मों में निरन्तर मन को नियुक्त किये रहना ही कर्मयोग कहलाता है।' (कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु। बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते।। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्- ब्राह्मण- 1/मन्त्रः-2/25-26)

कर्तव्यबोध का तात्पर्य

व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक जीवन में निःश्रेयस् की प्राप्ति के लिए कर्तव्य कर्म नितान्त आवश्यक है। पारिभाषिक अर्थों में करने योग्य कर्म को ही कर्तव्य कहा जा सकता है। जिसे धर्म, सम्प्रदाय, समय, परिस्थिति एवं स्वभाव के अनुरूप धारण करना होता है। व्यक्ति की अलग-अलग समय एवं स्थान में भूमिका, उत्तरदायित्व तथा नैतिकता के आधार पर कर्म का निर्धारण कर्तव्य कर्म है। **स्वामी विवेकानन्द** के अनुसार- 'कर्तव्य की कोई वस्तुनिष्ठ परिभाषा कर सकना नितान्त असंभव है।' (विवेकानन्द, खण्ड- 3, 2012, पृ. 39) *'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'* तथा *'परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्'* की भावना से प्रेरित कर्तव्य का ज्ञान कर्तव्यबोध है। जब राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि से युक्त बुद्धि में स्वयं के उत्तरदायित्वों अथवा कर्मों का ज्ञान होता है तब यह ज्ञान स्वार्थ, महत्वाकांक्षा, आसक्ति का कारण बन जाता है। इस प्रकार के कर्म में मानवीयता, नैतिकता, सामाजिकता का अभाव होता है। परिणामस्वरूप ऐसा ज्ञान महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए दूसरों के हितों की उपेक्षा करते हुए स्वार्थ एवं अहं के पोषण में ही लगा रहता है। जबकि इसके विपरीत बोध ज्ञान का शुद्धतम रूप है, जिसमें समष्टि के कल्याणार्थ अपने धर्म को कर्म मानकर उपासना होती है। भूमिका या उत्तरदायित्व के अनुरूप जैसे राजनेता की राजनीति, शिक्षक की शिक्षा, व्यवस्थापक की व्यवस्था, विद्यार्थी का अध्ययन, चिकित्सक की चिकित्सा जैसे कर्म का ज्ञान तदनुरूप आचरण कर्तव्य बोध है।

कर्मयोग कर्तव्यबोध की पृष्ठभूमि

समस्त इच्छाएँ ही अपेक्षा का कारण हैं। इसलिए **स्वामी विवेकानन्द** कहते हैं- 'कर्मयोगी को समस्त भय तथा इहलोक या परलोक में भोग की इच्छा को सदा के लिए निकाल देना चाहिए।' (विवेकानन्द, खण्ड- 7, 2012, पृ. 324) अपेक्षा त्याग का अर्थ कर्म के प्रति उदासीनता अथवा अकर्मण्यता नहीं है और न ही वर्तमान कर्म की उपेक्षा है। अपेक्षा एवं उपेक्षा दोनों में ही कर्ता का भाव संलग्न है, जबकि कर्मयोग में कर्ता एवं भोक्ता के भाव का अभाव है। इसलिए कर्म करते रहना चाहिए कर्मफल की कामना नहीं करनी चाहिए। (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। श्रीमद्भगवद्गीता– 2.47) न ही कर्म की उपेक्षा करनी चाहिए तभी कर्मयोग सिद्ध होगा। 'परम्परागत शास्त्रों के अनुसार कर्म का सम्पादन वाणी, मन और बुद्धि के द्वारा होता है।' (सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, 2004, पृ. 59) जो मनुष्य की प्रकृति, प्रवृत्ति, स्वभाव एवं पूर्व के संस्कारों से संचालित होते हैं। **स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती** के अनुसार- 'सामान्यतः हमारे 99.9 प्रतिशत कार्य अहंकारयुक्त होते हैं।' (सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, 2004, पृ. 57) अर्थात् कर्ता एवं भोक्ता भाव से किए जाते हैं। जो पुनः नए संस्कार रूप में संचित होकर आगामी दुःख के कारण बनते हैं। 'फल की आशा रखने में कुछ गलत नहीं। गलत है उसके प्रति आसक्त हो जाना, सनकी हो जाना।' (सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, 2013, पृ. 24) अपने-पराय की अभेद भावना से स्वयं को ईश्वर का निमित्त मानकर समर्पण से किया गया कर्म मन के बंधनों को शिथिल करता है। योगस्थ होकर किये गए कर्म से कर्तव्य कर्म का बोध होता है, जो कि निष्ठा पूर्वक करना चाहिए। **स्वामी विवेकानन्द** के अनुसार- 'प्रत्येक कर्तव्य पवित्र है और कर्तव्य-निष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है; बद्ध जीवों की भ्रान्त, अज्ञानतिमिराच्छन्न आत्माओं को ज्ञान और मुक्ति दिलाने में यह कर्तव्य-निष्ठा निश्चय ही बड़ी सहाय है।' (विवेकानन्द, 2012, पृ. 184) 'कर्मयोग में क्षुद्र अहं भाव की चेतना नहीं रह जाती। जब योगयुक्त होकर कार्य किया जाता है, तब मैं, यह-वह कर रहा हूँ यह ध्यान ही नहीं रहता।' (विवेकानन्द, 2012, पृ. 190) चेतना की विराट स्थिति में स्वयं के अहं भाव की क्षुद्र मानसिकता समाप्त हो जाती है तथा स्वयं के बोध की दीप्ति प्रज्जवलित होती है।

कर्मयोग से कर्तव्यबोध

'कर्मयोग न केवल वैराग्य और निष्काम भाव से किया जाने वाला कार्य होता है, बल्कि वह उच्च एकाग्रता और सजगता पूर्वक किया गया कार्य भी होता है।' (सरस्वती, स्वामी सत्यसंगानन्द, 2012, पृ. 51) 'कर्मयोग ही वह प्रथम योग है जिसे उपनिषदों ने योग में पूर्णता की अवस्था के बोध हेतु आवश्यक माना है।' स्वबोध अर्थात् स्वयं के क्षुद्र एवं विराट दोनों प्रकार के स्वभाव का ज्ञान। 'कर्मयोग कर्म के द्वारा मन को शुद्ध करता है।' (विवेकानन्द, खण्ड- 7) कर्मयोग से प्राप्त दृष्टि अहं आदि स्वार्थ व संकीर्ण क्षुद्र मानसिकता को देखने में सक्षम होती है। स्वयं की इन प्रवृत्तियों का बोध सकारात्मक एवं दिव्यता की ओर उन्मुख करता है। यही स्वयं की ओर सकारात्मक उन्मुखता स्वधर्म रूप कर्म करने की प्रेरणा जागृत करती है। कर्मयोग से प्राप्त उच्च एकाग्रता और सजगता से स्वयं के कर्तव्य, भूमिका, उत्तरदायित्व का बोध कराती है।

निष्कर्ष

कर्मयोग सजगता, निष्ठा एवं फलाकांक्षा रहित पुरूषार्थ की प्रवृति का विस्तार है, जिसमें स्वयं को देखना, जानना, समझना एवं तदनुकूल निष्ठापूर्वक उत्तरदायित्वों को पूरा करना सहज एवं स्वभाविक होता है। व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक सभी भूमिकाओं के प्रति निष्ठावान होना कर्मयोग से सहज हो सकता है।
कर्मनिष्ठा से कर्मयोग की भावना का विस्तार होगा और कर्मयोग से चेतना का विस्तार होगा तथा चेतना के विस्तार से स्वबोध की भावना का विस्तार होगा। स्वबोध ही स्वयं, समाज, संस्था, व्यवस्था एवं लोक कल्याण के लिए उपयोगी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

शर्मा, आचार्य पं. श्रीराम. (2018). *यजुर्वेद संहिता*. मथुरा: युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि।
शर्मा, पं. श्रीराम. (2016). *108 उपनिषद् (प्रथम-ज्ञानखण्ड)*. मथुरा: युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि।

© 2026 by Author

DIVYAYATAN -
A JOURNAL OF LAKULISH YOGA UNIVERSITY
Peer Reviewed Journal
E-ISSN: 3048-4928

पोद्दार, हनुमानप्रसाद, गोस्वामी, चिन्मयलाल, अग्रवाल, & शास्त्री, केशोराम. (2071 [विक्रमी संवत]). *कल्याण: उपनिषद् अंक (तेईसवें वर्ष का विशेषांक)*. गोरखपुर: गीताप्रेस।

गोयन्दका, हरिकृष्णदास. (2011). *श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य (हिन्दी अनुवाद सहित)*. गोरखपुर: गीताप्रेस।

तिलक, ब. ग. (n.d.). *श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र* (माधवराव सप्रे, अनुवादक). दिल्ली: न्यू साधना पॉकेट बुक्स।

सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द. (2004). *योग दर्शन (योग औपनिषदीय दृष्टिकोण)*. बिहार: योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर।

सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द. (2013). *कर्म और कर्मयोग*. बिहार: योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर।

सरस्वती, स्वामी सत्यसंगानन्द. (2012). *कर्म संन्यास*. बिहार: योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर।

श्रीवास्तव, डॉ. श्रीमती शैलजा. (2006). *पदार्थ विज्ञान*. वाराणसी: चौखम्भा ओरिएंटालिया।

विवेकानन्द, स्वामी. (2012a). *विवेकानन्द साहित्य (खण्ड 3)*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम।

विवेकानन्द, स्वामी. (2012b). *विवेकानन्द साहित्य (खण्ड 7)*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम।

विवेकानन्द, स्वामी. (2012c). *विवेकानन्द साहित्य (खण्ड 9)*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम।

© 2026 by Author